भारत में नारीवादी सामाजिक रूपान्तरण की प्रक्रियाः ऐतिहासिक सन्दर्भ

डॉ0 संजय कुमार पन्त
एसो0 प्रोफे0 एवं विभागाध्यक्ष इतिहास
के0जी0के0 महाविद्यालय, मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश
Email:13sanjaypant@gmail.com

प्राप्तिः 26.01.2021
स्वीकृतः 05.03.2021

सारांश

भारत में नारीवादी सामाजिक रूपान्तरण की प्रक्रिया का ऐतिहासिक अवलोकन करने पर तीन तथ्य सामने आते हैं। प्रथम ऐतिहासिक विमर्श से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि जो भारतीय समाज पितृसत्तात्मक व्यवस्था से लम्बे समय से जकड़ा हुआ था उस समाज में स्त्री प्रश्नों को हल करने के लिए उस संरचनात्मक व्यवस्था पर चोट करने के स्थान पर पुनर्जागरण काल से आधुनिक काल तक स्त्री प्रश्नों को साधन के रूप में स्वीकार किया गया जहाँ राष्ट्र मुक्ति प्रधान लक्ष्य बनकर रह गया। द्वितीय स्वतन्त्रता के बाद भी पितृसत्ता की गहरी परम्परा, विधियों व कानूनों के सालैंगिक पक्षपाती क्रियान्वयन व समाज के प्रत्येक वर्ग में कानूनों की वैधानिक जानकारी के अभाव आदि ने महिलाओं के प्रति इसके प्रभाव को कम ही किया है। तृतीय नारीवादी विचारधारा व उससे सम्बन्धित विषयों पर काफी कुछ लिखा जा रहा है, पत्र पत्रिकायें प्रकाशित हो रही हैं, स्कूलों व कालेजों, विश्वविद्यालयों में वीमैन स्टडीज पर शोध सेमिनार व्याख्यान, डिबेट आदि वृहद् रूप से कराई जा रही है जिसमें लिंग–भेद, उसके प्रभाव तथा नारियों द्वारा नारियों पर लेख व आलोचना आदि पर बल दिया जा रहा है। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि स्त्री प्रश्न को पितृसत्ता, श्रम के लैंगिक विभाजन, स्त्रियों के स्वायत्त अधिकारों, स्वायत्त व्यक्तित्व के रूप में स्वतन्त्र निर्णय व स्वतन्त्र इच्छा के प्रश्न को सामाजिक सांस्कृतिक ढॉचे से जोड़ते हुए पृथक रूप से देखा जाये। जब तक स्त्री–पुरूष के आधारभूत संतुलन पर चोट नहीं की जाती तब तक नारीवादी सामाजिक रूपान्तरण की प्रक्रिया अपने सही अर्थो में रूपान्तरित हो ही नहीं सकती और इसके बिना सही मायने में इसके रूपान्तरण की कल्पना मात्र करना भी बेमानी ही होगा ।

प्रस्तावना

चार्ल्स फूरियर ने जिसे नारीवादी शब्द का जनक माना जाता है, स्त्रियों की आजादी को सामाजिक पुनर्गठन की योजना से जोड़ते हुए महिलाओं की सामाजिक पराधीनता के बुर्जुआ सिद्धान्तों को कठोर चुनौती दी और एक ऐसी नारी की संकल्पना की जो कि पुरूषों के साथ समानता व सहभागिता के सम्बन्ध के आधार पर समाज को रूपान्तरित कर सकती हो और

आवश्यकतानुरूप रूपान्तरित भी हो सकती हो।[1] यह वह समय था जहाँ स्त्रियों की असमानता के अन्तर्सम्बन्धित व अन्तर्निहित असमान सम्बन्धों के प्रतिरोध की पृष्ठभूमि बन रही थी, जो कि कालान्तर में नारी मुक्ति की उस अवधारणा के रूप में विकसित हुई जो सीधे पुनर्जागरण युग की तर्कपरता, जनवादी अवधारणा व बुर्जुआ जनवादी क्रान्तियों से जुड़ी थी।[2] ओलम्पी दि त्राउस का फ्रांसीसी राज्य क्रान्ति के दौरान स्त्रियों के अधिकारों का वैकल्पिक घोषणा पत्र महिलाओं की राजनीतिक सक्रियता की सार्वजनिक व लम्बी परम्परा से अवगत कराता है जहाँ यह अभिव्यक्ति की गई कि स्त्रियों का जन्म स्वतन्त्र रूप से हुआ है और अधिकारों के क्षेत्र में वे पुरूषों के समान हैं। कानून सामान्य इच्छा की अभिव्यक्ति के रूप में हो और इसे बनाने में पुरूष व स्त्री दोनों की भागीदारी अपेक्षित हो। महिलाओं की संसद में भागीदारी सुनिश्चित हो।[3] निःसन्देह यह दस्तावेज नारी आन्दोलन की चारित्रिक पृष्ठभूमि को फ्रांसीसी राज्य क्रान्ति तक ले जाता है जहाँ स्वतन्त्रता, समानता व बन्धुत्व का नारा सुनाई देता है। 1792 में मेरी बोल्सटोन क्राफ्ट ने अपनी पुस्तक **ए विंडिकेशन आफ दि राइट्स ऑफ दि वीमैन** में स्त्री व पुरूष के बीच सामाजिक – राजनीतिक समानता की आवाज उठाई और स्त्रियों पर पुरूषों के शासन का पुरजोर विरोध किया।[4] मार्गरेट फुलर की पुस्तक **वीमैन इन द नाइन्टीन्थ सैन्चुरी**[5], उन्नीसवीं शताब्दी की नारी का चित्रण करती है तो 1848 में प्रकाशित अपनी पुस्तक **दि ऑरिजन आफ दि फैमिली प्राइवेट प्रापर्टी एण्ड दी स्टेट में फैडरिक ऐगेन्स** ने स्त्री दासता का आरम्भ समाज में निजी सम्पत्ति व वर्गीय मंथन की प्रक्रिया में देखा और इसके निदान का उपाय समाजवादी शासन की स्थापना में खोजा[6]। नारीवादी आलोचना के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण नाम वर्जीनिया वौल्फ का है जिसने 1929 में **ए रोम ऑफ आनियस ओन** नामक पुस्तक में पितृप्रधान समाज में नारियों की सांस्कृतिक, आर्थिक व शैक्षिक अनुपलब्धियों व अयोग्यताओं की भी बात की जिसकी वजह से वे स्वयं की सृजनात्मक उपलब्धियों को पहचान नहीं पाई या बढ़ा नहीं पाई।[7] जान स्टुअर्ट मिल ने अपनी पुस्तक **आन दि सब्जेक्शन आफ वीमैन** में शिक्षा व कानूनी समानता को स्त्रियों की समानता का आधार बनाया।[8] सीमोन दि बुआर ने **दि सैकण्ड सैक्स** में तो मानवशास्त्र, मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र व इतिहास के आधार पर यह प्रतिपादित किया कि स्त्रियों का दमन प्राकृतिक प्रक्रिया न होकर इतिहास व संस्कृति की देन है।[9] इसी क्रम में मिलेट ने स्त्री व पुरूष के बीच यौन सम्बन्ध को पुरुष की महिला पर शारीरिक मनोवैज्ञानिक व आर्थिक सत्ता की अभिव्यक्ति कहा।[10] इसी क्रम में अमेरिका में मेरी एल्मेन की 1968 में **थिंकिंग एबाउट वीमैन** प्रकाशित हुई।[11] शुलामिथ फायर स्टोन ने महिलाओं की अधीनता के पीछे मूल कारण जैविकीय संरचना को बतलाया।[12] कुल मिलाकर नारीवादी चिन्तन की जो विचारधाराऐं सामने आई उन सबमें यह सहमति थी कि स्त्रियों की निम्न सामाजिक हैसियत पुरूषों द्वारा ही निर्मित है इसमें जैविकीय स्थिति का कोई लेना–देना नहीं है और यही सोच प्रायः सभी नारीवादी विचारधाराओं को सार्वजनिक निजी का भेद इस महत्वपूर्ण बिन्दु पर बहस करता दिखाई देता है जहाँ वह निजी क्षेत्र को भी न्याय समानता और स्वतन्त्रता की कसौटी में कसने की कवायद करता है किन्तु नारी उत्पीड़न के कारणों के सन्दर्भ में मतभिन्नता के फलस्वरूप नारीवाद को

किसी एक निश्चित दायरे में नहीं बाँधा जा सकता। अतः नारीवाद सामाजिक रूपान्तरण के लिए एक प्रस्तावना तो है ही साथ ही एक आन्दोलन भी है जो कि महिलाओं के शोषण को समाप्त करने की कवायद करता है। शोध पत्र का उद्देश्य भारत में नारीवाद की सामाजिक रूपान्तरण की प्रक्रिया को इतिहास के सन्दर्भ में खोजने का प्रयास है।

रूपान्तरण की इस प्रक्रिया के लक्षण भारण में 19वीं शताब्दी में दिखाई देने लगते हैं जहाँ इस दौरान उपनिवेशवाद और उपनिवेश विरोधी राष्ट्रवादी, राष्ट्रीय संस्कृति व राष्ट्रीय अस्मिता की ऐतिहासिक चेतना की खोज जैसे प्रश्नों की व्याख्या में उलझे हुए थे।[13] इस प्रक्रिया के उपनिवेश शासन समर्थक वर्ग ने महिलाओं की खराब स्थिति के लिए भारतीय सभ्यता व समाज के पिछड़ेपन का तर्क प्रस्तुत करते हुए इसे सुधारने के लिए अपने शासन के औचित्य की दुहाई श्वेत जाति का बोझ के रूप में देने के फलस्वरूप स्त्रियों की स्थिति के प्रश्न को पाश्चात्यीकरण, सुधारवादी राष्ट्रवाद, पुनर्जागरण व आधुनिकीकरण सम्बन्धी विचारधाराओं के क्रम में जिस प्रकार खोजने का प्रयास किया उसने परम्परागत और प्रतिक्रियावादी दृष्टिकोण व प्रगतिशील विचारधारा के मध्य जबरदस्त बहस को छेड़ दिया। यहीं पर यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि क्या राष्ट्रीय आन्दोलन में या कहिये औपनिवेशिक शासनकाल के दौरान स्त्रियों की स्थिति में हुए सुधार आन्दोलनों व राष्ट्रीय आन्दोलन में महिलाओं की सक्रियता या भागीदारी ने नारीवादी चेतना का विकास किया ? इस प्रश्न का उत्तर स्त्री विमर्श से जुड़े उन प्रश्नों में खोजना होगा जो कि वास्तव में नारीवादी प्रश्न हैं। यह ठीक है कि राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान भागीदार रही स्त्रियों के जीवन में थोड़ा बहुत परिवर्तन अवश्य आया होगा पर क्या ये पुरूष प्रधान समाज की वर्चस्ववादी आकांक्षाओं से ऊपर उठ पाई ? पाश्चात्य निन्दामूलक आलोचना के प्रत्युत्तर में उन्नीसवीं सदी के आधुनिकता समर्थक भारतीय बुद्धिजीवियों ने एक स्वर्णिम अतीत की संकल्पना कर वहाँ स्त्रियों के सम्मान व आदर देने सम्बन्धी दावों को प्रस्तुत कर उन प्रथाओं में सुधार की बात कही जिन्हें वे विकृतियाँ मानते थे और कन्या शिशु हत्या पर प्रतिबन्ध, विधवाओं के पुनर्विवाह, सती का उन्मूलन जैसे मुद्दों पर शास्त्रों का हवाला देकर वैध ठहराया गया जिसे हिन्दुओं की कट्टर उग्र प्रतिक्रिया का सामना करना पड़ा। एक और बात महत्वपूर्ण थी कि हिन्दू व मुसलमान दोनों ही की महिलाओं के लिए पर्दे का अर्थ बुरके या जनानाखाना की दीवारों के पीछे भौतिक अलगाव न होकर ऐसी सामाजिक व्यवस्था की बहुलता है जो स्त्री व पुरूष के बीच भौतिक ही नहीं सामाजिक दूरी को कायम करता है। कुल मिलाकर 19वीं शताब्दी में स्त्री प्रश्न जब प्रगति और आधुनिकता विषयक संवादों का अंग बना तो स्त्री शिक्षा का एक आन्दोलन आरम्भ हुआ जो सामाजिक अस्तित्व की दशा में सुधार नहीं कर पाया जिसके पीछे स्त्री मुक्ति के उद्देश्य की कमी प्रमुख कारण था। फलतः इस शिक्षा ने स्त्री को सुपत्नी और सुमाता की आदर्श मंडित घरेलू भूमिका में बाँध दिया।[14] पर इसका प्रभाव इतना अवश्य पड़ा कि 1882 में ताराबाई शिंदे की पुस्तक ए कम्पेरिजन बिटवीन वीमैन एण्ड मैन प्रकाशित हुई जिसमें स्त्री अधिकारों की वकालत पुरूषों के अधिकारों के समान होने की बात कही गई[15] परन्तु ताराबाई शिंदे की यह वकालत परिवार में ही स्त्रियों को और अधिक सम्मान व आदर के भाव तक सीमित

थी। इसी प्रकार पंडिता रमाबाई की चुनौती को भी रूढ़िवादियों की निन्दा और सुधारकों की आलोचना का सामना करना पड़ा।[16] ओ हैनलन ने इसके पीछे उपनिवेशी राजसत्ता और राष्ट्रवादी कुलीन पुरूषों के बीच व्यापक आधार वाली सहमति को महत्वपूर्ण बिन्दु माना है।[17] एक अत्यन्त रोचक बात बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में सामने आई जिसका आरम्भ 19वीं शताब्दी के अन्त तक आते–आते 1875 में बंकिम चन्द्र चटर्जी ने वन्देमातरम् गीत लिखकर और पश्चात् में 1882 में आनन्दमठ उपन्यास लिखकर सन्दर्भ स्वरूप चित्रित कर दिया था, वह था यूरोप की पितृभूमि की कल्पना के ठीक विपरीत मातृभूमि की संकल्पना। अरविन्द घोष, विपिन चन्द्र पाल, जवाहर लाल नेहरू और अवनीन्द्र नाथ घोष ने इस संकल्पना को जिस रूप में प्रस्तुत किया उसने इस बहस को बल दे दिया कि मातृत्व की यह प्रस्तुति राष्ट्रवाद की सांस्कृतिक प्रस्तुति का माता व प्रकृति का समीकरण तो नहीं है? नारीवादी लेखिका जसोधरा बागची ने इस संकल्पना को शक्ति व सामर्थ्य का एक मिथक मानते हुए इसके प्रभाव को स्त्रियों की वास्तविक शक्ति छीनकर अब सन्तानोत्पत्ति तक सीमित कर शिक्षा व व्यवसाय की सभी संभावनाओं से वंचित करने वाला बतलाया है।[18] मातृत्व की संकल्पना से एक कदम और आगे बढ़ते हुए गाँधी ने तो नारियों की यौनवृत्ति को ही नकारते हुए बहनापे के रूप में प्रस्तुत किया। सुजाता पटेल ने गाँधी की नारियों के प्रति सोच को भारतीय मध्यवर्गीय परम्परा के भीतर ही सिमटा हुआ स्वीकार किया जहाँ गाँधी नारियों की शारीरिक दुर्बलता के साथ–साथ उनकी आत्मिक शक्ति को स्वीकार करते हुए नारियों के लिए राजनीतिक भागीदारी का निरूपण करते दिखाई देते हैं।[19] सवाल यह उठता है कि क्या गाँधी द्वारा चलाये गये आन्दोलन में स्त्रियों की भागीदारी ने उन स्त्री प्रश्नों की चर्चा को बल दिया जो कि घरेलू व पारिवारिक जीवन से सम्बन्धित थे ? उत्तर मिलता है नहीं। मार्के की बात तो यह थी कि आन्दोलन में महिलाओं ने तभी अपनी हिस्सेदारी निभाई जब उनके संरक्षक पुरूषों ने इसे चाहा और अधिकांशतः उन्हीं परिवारों की स्त्रियों ने सामान्यतः भाग लिया जिनके पुरूष पहले से ही राष्ट्रीय आन्दोलन में भागीदार थे। यह ठीक है कि कुछ हिस्सों में ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी रही पर अधिकांशतः भागीदारी का स्वरूप शहरी ही था। निम्नवर्गीय स्त्रियाँ व वेश्यायें हाशिए पर ही रहीं। 1921 के खिलाफत आन्दोलन में महिलाओं की भागीदारी रही पर क्या इसने परदे की प्रथा का उन्मूलन किया ? उत्तर मिलता है नहीं। कारण मुसलमानों के लिए यह एक सांस्कृतिक विशिष्टता का प्रतीक जो था।[20] नारीवाद के संदर्भ में बीसवीं सदी के आरम्भिक वर्षो में जिस नारीवादी उर्दू साहित्य का विकास हुआ उसने अवश्य ही लैंगिक सम्बन्धों की परम्परागत विचारधाराओं की धज्जियाँ उड़ाई परन्तु वे भी मुस्लिम समुदाय की छवि को ही अधिक महत्व देती नजर आई।[21] जहाँ तक बीसवीं सदी में अस्तित्व में आने वाले स्त्री संगठनों का प्रश्न है उसमें 1917 में विमेन्स इंडियन एसोसिएशन जिसके गठन में आयरिश नारीवादी मार्गरेट कजिंस व ऐनी बेसेण्ट का प्रमुख हाथ था, महत्वपूर्ण थीं। 1925 में काउन्सिल ऑफ विमैन इन इण्डिया का गठन, 1927 में आल इण्डिया विमैंस कांफ्रेंस का गठन महत्वपूर्ण थे। आल इण्डिया विमैन कांफ्रेंस ने तो स्त्रियों के मताधिकार, विवाह सम्बन्धी सुधार, कामकाजी महिलाओं के अधिकारों के प्रश्नों को उठाया।[22] 1910 में सरला देवी चौधरानी ने स्त्री महासंघ

की बैठक इलाहाबाद में आहूत की जिसका उद्देश्य स्त्री शिक्षा था। आल इण्डिया बंगाल विमैंस यूनियन ने नारियों के गैर कानूनी व्यापार पर प्रतिबन्ध की वकालत की। सवाल उठता है कि 1921 से 1930 के बीच प्रान्तीय विधायिकाओं में स्त्रियों को मताधिकार देना, 1935 में भारत सरकार अधिनियम के अन्तर्गत मतदाता स्त्रियों का अनुपात 1.5 प्रतिशत कर देना, 929 का बाल विवाह प्रतिबन्ध कानून (शारदा कानून) पारित होना, 1930 के दशक में सम्पत्ति, विरासत व तलाक, दहेज, वैश्यावृत्ति से सम्बन्धित कानूनों का पारित होना क्या स्त्री संगठनों के सीधे प्रचार का परिणाम था? ऐतिहासिक विश्लेषण से यह बात सामने आती है कि स्त्री मुद्दों को जन आन्दोलन बनाने के बजाय स्त्री संगठनों ने या तो सरकार को ज्ञापन दिए या फिर राष्ट्रवादियों से समर्थन की अपील की। 1920 से राष्ट्रवादी नेताओं ने राष्ट्र निर्माण में स्त्रियों की भागीदारी को कारगर अस्त्र समझते हुए उपरोक्त मुद्दों की वकालत करना आरम्भ किया जिसके पीछे मूलतः स्त्री प्रश्न से ऊपर राष्ट्रवाद का भाव निहित था।[23] यही कारण है कि उपरोक्त तमाम कानूनो ं के अस्तित्व में आने के बाबजूद भी नारी लैंगिक सम्बन्धों में बहुत सुधार आने की बात तो बहुत दूर शारदा कानून जिसमें कन्या की विवाह की आयु न्यूनतम 14 व पुरूष की 18 वर्ष रखी गई थी लागू कर पाना भी कठिन हो गया।[24] इतना ही नहीं 1930 के दशक में जो मुस्लिम स्त्रियाँ हिन्दू स्त्रियों के साथ मिलकर मताधिकार की माँग कर रही थीं। 1935 में साम्प्रदायिक आधार पर सीटों के बँटवारे को लेकर बंट गई। संयुक्त निर्वाचक मंडल को मुस्लिम नेतृत्व द्वारा अस्वीकार करने का मूल कारण इसके पीछे पुरूषों की हामी न होना ही था।[25] स्त्रियों की राजनीतिक सक्रियता 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के दौरान विशेष रूप से देखी जा सकती है जहाँ सुचेता कृपलानी ने अहिंसक प्रतिरोध का नेतृत्व किया तो अरूणा आसिफ अली ने गांधी की आत्मसमर्पण की सलाह को मानने से इन्कार कर दिया।[26] ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी कम्युनिस्ट आन्दोलन के साथ नए स्तर तक सामने आई जिसे 1946 के तेलंगाना आन्दोलन के रूप में देखा जा सकता है। 1946 से 1951 तक आन्ध्रा में हैदराबाद के निजाम के विरोध में तेलंगाना संघर्ष में स्त्रियों का जुझारू संघर्ष स्पष्ट दिखाई देता है। परन्तु हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कम्युनिस्ट नेतृत्व की सोच भी स्त्रियों के संदर्भ में विवाह व परिवार के दायरे तक ही सीमित थी, और उससे बाहर वह सोच भी न सका। यहाँ तक कि जब भी यौन नैतिकता व अनुशासन का प्रश्न उठा तो स्त्रियों को ही दोषी माना गया। इतना ही नहीं तेलंगाना की वीरांगना मल्लू स्वराज्यम् जिसने तेलंगाना आन्दोलन में भागीदारी नेतृत्व संभाला था आन्दोलन के बाद गृहस्थी तक सीमित हो गई क्योंकि कम्युनिस्ट नेतृत्व महिलाओं को परम्परागत सीमाओं में ही रखने की कवायद कर रहा था।[27] भारत विभाजन के दौरान तो हिंसा से जुड़ी वारदातों में पुरूषों की समझ इस हद को पार कर गई कि स्त्रियों के सतीत्व मर्दन को ही दुश्मन पर विजय का आधार मान लिया गया। लगभग एक लाख स्त्रियों के अपहरण या बलात्कार के दंश को देश ने झेला।[28] रितु मैनन व कमला भसीन ने इन स्त्रियों को हिंसा के सातत्य की कैदी की संज्ञा दी जहाँ एक दूसरे समुदाय के पुरूषों के हाथों बलात्कार की शिकार हो गई या फिर अपने बन्धु बान्धवों द्वारा उकसाने पर आत्म हत्या की हदें पार कर गई।[29] यह ऐतिहासिक सच बार–बार इस ओर संकेत कर रहा है कि राष्ट्रीय आन्दोलन

में महिलाओं की भागीदारी सचमुच स्त्री प्रश्न का हल नहीं था। राष्ट्रवादियों ने महिलाओं की घरेलू सामाजिक या राजनीतिक गतिविधियों में परम्परा से परे हटकर किसी भी परिवर्तन के बारे में न तो विचार किया और न सोचा, क्रियान्वयन की बात तो बहुत दूर की थी। राष्ट्रीय आन्दोलन की विचारधारा से पृथक नारीवादी चेतना का विकास हो ही नहीं पाया जिसके पीछे स्त्री प्रश्नों का राष्ट्र निर्माण के लिए साधन के रूप में प्रयोग किया जाना प्रमुख कारण था। राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान स्त्री प्रश्न लक्ष्य अथवा साध्य नहीं थे।

यहाँ पर नेहरू के उस कथन की चर्चा आवश्यक हो जाती है जिसमें उन्होंने स्वीकार किया था कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् स्त्री प्रश्न स्वतः ही सुलझ जायेंगे व उनका निदान भी निकल आयेगा। सवाल उठता है कि स्वतन्त्र भारत में राज्य की रूपरेखा सुनिश्चित करने वाले संविधान में स्त्री प्रश्नों की चर्चा हुई या नहीं ? बड़ा आश्चर्य होता है जब कि एक ओर तो संविधान में स्त्रियों को समान अधिकार की बात की गई[30] वहीं दूसरी ओर राजनीतिक व आर्थिक अधिकारों में सहमति के बाबजूद विवाह व परिवार के मामले में समलैंगिक समानता के प्रश्न पर पारम्परिक विरोध था।[31] संविधान समानता के सिद्धान्त पर अनुच्छेद 15 अपनी स्वीकृति देता है परन्तु धर्म के आधार पर आधारित पारिवारिक कानूनों को जो कि विवाह, सम्पत्ति व परिवार से सम्बन्धित थे, संविधान के उक्त अनुच्छेद 15 को सीधे चुनौती था।[32] इसके पीछे सबसे बड़ा कारण धर्म की निजता का सम्मान व अल्पसंख्यक वर्ग के समुदाय के अपनी निजी कानूनों में हस्तक्षेप न करने की सोच भले ही रही हो पर इसने लैंगिक भेदभाव को दूर कर समान अधिकारों की स्थापना की भावना पर चोट की[33] जो कि 1985 के शाहबानो केस के परिणाम से स्वतः ही स्पष्ट है।[34] समान काम के लिए समान वेतन का अधिकार भी 1978 में अस्तित्व में आया।[35] स्पष्ट है कि संविधान स्वयं भी समाज में व्याप्त सालैंगिक विभेद से प्रभावित हुए बिना न रह सका। नारीवादी लेखिका अनीता आर्या ने तो भारतीय संविधान में उस समाज को देखा जिसमें शान्तचित्त रूप से पुरूष वर्चस्व स्थापित था जो कि पितृसत्ता को समाज के स्वाभाविक स्वरूप के रूप में स्वीकार कर रहा था।[36] कुल मिलाकर महिलाओं से सम्बन्धित वैधानिक, संवैधानिक व प्रशासनिक नीतियों व प्रावधानों की असंगतता से यह स्पष्ट हो गया कि भारतीय परिवेश पितृसत्तात्मक प्रभाव से जकड़ा हुआ है। महिलाओं के पिछड़ेपन का हवाला देने वाली 1974 की समानता की ओर शीर्षक से सामने आई सरकारी समिति की रिपोर्ट[37] ने यह स्पष्ट कर दिया कि यदि संविधान में समानता का अधिकार मात्र दे भी दिया जाय तो भी उस ओर बिना प्रयास के विकास के लाभ की समानता प्राप्त न हो सकेगी। 1970 का दशक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर नारीवादी दृष्टिकोण की दृष्टि से एक नई सुगुबुहाट का समय था जब नारीवाद की सफलता के विषय में नए सिरे से विचार–विमर्श आरम्भ हो गया। मिलेट ने तो यहाँ तक कह दिया कि नारीवाद का अब तक का चरण क्रान्ति के स्थान पर सुधार में समाप्त हुआ है। लैंगिक क्रान्ति को पाने के लिए समाज में आमूल–चूल परिवर्तन की आवश्यकता थी जहाँ विवाह व परिवार जैसी संस्थाओं को भी बदलना होगा जिसके बिना नारीवाद की सफलता कठिन है। 1961 में अमेरिका में राष्ट्रपति कैनेडी का महिला आयोग का गठन करना, 1971 में वाशिंगटन में नेशनल वीमैन पालिटिकल

काकस की स्थापना, जुलाई 1975 में महिला सम्मेलन का आयोजन इस बात का स्पष्ट प्रमाण थे कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नारियों से सम्बन्धित हर सिद्धान्त पर प्रश्न चिन्ह लगाया गया। फलस्वरूप भारत सरकार द्वारा महिलाओं के विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत कानून व परियोजनाओं को जामा पहनाने की कोशिश की। 1961 का प्रसूति लाभ अधिनियम, दहेज अधिनियम 1961, चिकित्सकीय गर्भावस्था समापन अधिनियम 1971, समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976, अनैतिक व्यापार निषेध अधिनियम 1986, स्त्री निषेध अधिनियम 1987, भ्रूण परीक्षण, भ्रूण हत्या, दहेज उत्पीड़न, बलात्कार कानून संशोधन, विवाह के अन्तर्गत सम्पत्ति सम्बन्धों में सुधार अधिनियम तथा 1976 में समाज कल्याण व समाज ब्यूरों की स्थापना व आंगनबाड़ी, बाल देखभाल सेवाओं का क्रियान्वयन, 6 व 7वीं पंचवर्षीय योजनाओं में महिलाओं के स्वास्थय, शिक्षा व रोजगार पर जोर[38] तथा 1990 में महिला सशक्तीकरण पर बल आदि महत्वपूर्ण कदम उठाये। इसी क्रम में 1993 में ग्राम पंचायतों व नगर निगमों में महिलाओं को 33 प्रतिशत आरक्षण महत्वपूर्ण कदम था परन्तु नेशनल फैमली हैल्थ III जिसने 28 राज्यों व राजधानी दिल्ली सहित 125 लाख महिलाओं का 2005–06 में सर्वेक्षण किया यह रिपोर्ट प्रस्तुत की कि राष्ट्रीय स्तर पर 40 प्रतिशत महिलायें घरेलू/ पारिवारिक हिंसा से ग्रस्त हैं जिसमें 63 प्रतिशत महिलायें शहरी परिवारों से हैं।[39] भारत में विगत 5 वर्षों में महिलाओं के विरूद्ध अपराध की स्थिति निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है –

विगत 5 वर्षो में महिलाओं के विरूद्ध अपराध[40]

वर्ष	कुल अपराध	महिलाओं के विरूद्ध अपराध	कुल आई.पी.सी. अपराधी
2001	1769308	130725	7.4
2002	1780330	131112	7.4
2003	1716120	131364	7.6
2004	1832015	143615	7.8
2005	1822602	143523	7.9

महिलाओं के विरूद्ध अपराधिक हिंसा[41]

अपराध	2000	2001	2002	2003	2004	2005
बलात्कार	16496	16075	16373	15847	18233	18359
अपहरण	15023	14645	14506	13296	15578	15750
दहेज हत्या	6995	6851	6822	6208	7026	6787
यातना	45778	49170	49237	50703	58121	58319
छेड़छाड़	32940	34124	33943	32939	34567	34175
यौन शोषण	11024	9746	10155	12325	10001	9984
लड़कियों का आयात	64	114	76	46	89	149

विगत 10 वर्षो में बलात्कार की घटनायें[42]

वर्ष	महिलाओं के विरूद्ध अपराध	बलात्कार की संख्या	प्रतिशत
1996	115723	14846	12.82
1997	110183	15330	13.91
1998	119012	15151	12.73
1999	123122	15468	12.56
2000	128320	16496	12.85
2001	130725	16075	12.29
2002	131112	16373	12.48
2003	131364	15847	12.06
2004	143615	18233	12.69
2005	143523	18359	12.79

उपरोक्त आँकड़े व सम्पूर्ण भारत की वर्तमान स्थिति यही प्रदर्शित करती है कि आज भी स्त्री प्रश्न एक समस्या के रूप में खड़ा है। यह ठीक है कि राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय महिला आन्दोलनों के दबाब के मद्देनजर महिलाओं के पक्ष में कई कानून बनाये गए लेकिन महिलाओं के प्रति हिंसा व अपराधों को नियन्त्रित करने में इन कानूनों की विफलता ने सामाजिक सुधारों के सम्पूर्ण मुद्दे को पुनर्विचार की पुनः प्रक्रिया के दरवाजे पर लाकर खड़ा कर दिया।[43] भारत में महिलाओं की स्थिति पर महिला संगठनों व समूहों ने चर्चा/बहस/ विचार विमर्श आरम्भ किया जहाँ यह विचार उभरकर सामने आया कि महिलाओं की भारतीय परम्परा के संरक्षण की एकांकी भूमिका व सुधार के सन्दर्भ में वस्तु के रूप में नहीं वरन् समलैंगिक, न्याय, समानता के आदर्श के विषय में देखना था जहाँ स्त्री प्रश्न किसी साध्य के लिए साधन न होकर स्वयं साध्य होंगे और पुरूषों के साथ समानता व स्वायत्तता व्यक्तित्व के रूप में उनके अधिकारों के प्रति सैद्धान्तिक सहमति अपरिहार्य हो।[44] उत्तर आधुनिककालीन नारीवादी विचारधारा ने नारीवाद की पूर्व अवधारणाओं से इतर उस संरचनात्मक व्यवस्था को ही तोड़ डालने की बात कही जो कि पितसत्तात्मक व्यवस्था के आधार पर आधारित हो। इनलोय[45], गाँधी एण्ड साहा[46], लियोनार्दो[47] ने स्वीकार किया कि सामाजिक जीवन की व्याख्या करने में लैंगिकता का विशेष महत्व होता है। हाल के कुछ वर्षो में महिलाओं पर महिला लेखिकाओं द्वारा लेखन व समस्याओं को उठाने का जो दौर आरम्भ हुआ है उसे गायनोक्रिटिसिज्म कहा गया। इस दृष्टि से आशा रानी बोहरा की क्रान्तिकारी महिलायें (दिल्ली 1996), कमलादास की दि डीसैण्डण्टस (नई दिल्ली 1965), नयनतारा सहगल की दि डे इन सैडो (नई दिल्ली 1971), अनीता देसाई की वायस इन द सिटी (नई दिल्ली 1968), शशि देश पाण्डे की दिडार्क नीड्स नो टैरर (नई दिल्ली 1980), कमला मार्कण्डेय की नैक्टर इन साइव (बम्बई, 1954), वीमैन एण्ड हिन्दू राइट कलैक्शन आफ एस्सेज (दिल्ली 1996) जयवर्धने की फैमनिज्म एण्ड नेशनलिज्म इन दि थर्ड वर्ल्ड (लन्दन 1986), रेखा मेहरा की वीमैन एण्ड रूरल ट्रांसफोर्मेशन, (दिल्ली, 1983) आदि कृतियाँ महत्वपूर्ण है। सभी नारी लेखिकाओं द्वारा गष्हस्थाश्रम से सम्बन्धित विषय जैसे बच्चों को जन्म देना, पालन–पोषण,

प्रतिशत
12.82
13.91
12.73
12.56
12.85
12.29
12.48
12.06
12.69
12.79

माँ – पुत्री तथा महिला का आपसी सम्बन्ध, वैवाहिक सम्बन्धों व स्त्री पुरूष के बीच यौन शारीरिक सम्बन्धों समस्याओं चाहे वह पति – पत्नी के ही क्यों न हों बड़े संवेदनशील तरीके से चित्रित किया है। कुल मिलाकर वर्तमान भारत में व्याप्त मूल स्त्री प्रश्नों को उठाया है और उसके पीछे मूल कारणों की ओर भी ध्यान आकर्षित किया है।

इस प्रकार निष्कर्षतः तीन तथ्य सामने आते हैं। प्रथम ऐतिहासिक विमर्श से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि जो भारतीय समाज पितृसत्तात्मक व्यवस्था से लम्बे समय से जकड़ा हुआ था उस समाज में स्त्री प्रश्नों को हल करने के लिए उस संरचनात्मक व्यवस्था पर चोट करने के स्थान पर पुनर्जागरण काल से आधुनिक काल तक स्त्री प्रश्नों को साधन के रूप में स्वीकार किया गया जहाँ राष्ट्र मुक्ति प्रधान लक्ष्य बनकर रह गया। द्वितीय स्वतन्त्रता के बाद भी पितृसत्ता की गहरी परम्परा, विधियों व कानूनों के सालैंगिक पक्षपाती क्रियान्वयन व समाज के प्रत्येक वर्ग में कानूनों की वैधानिक जानकारी के अभाव आदि ने महिलाओं के प्रति इसके प्रभाव को कम ही किया है। तृतीय नारीवादी विचारधारा व उससे सम्बन्धित विषयों पर काफी कुछ लिखा जा रहा है, पत्र पत्रिकायें प्रकाशित हो रही हैं, स्कूलों व कालेजों, विश्वविद्यालयों में वीमैन स्टडीज पर शोध सेमिनार व्याख्यान, डिवेट आदि वृहद् रूप से कराई जा रही है जिसमें लिंग–भेद, उसके प्रभाव तथा नारियों द्वारा नारियों पर लेख व आलोचना आदि पर बल दिया जा रहा है। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि स्त्री प्रश्न को पितृसत्ता, श्रम के लैंगिक विभाजन, स्त्रियों के स्वायत्त अधिकारों, स्वायत्त व्यक्तित्व के रूप में स्वतन्त्र निर्णय व स्वतन्त्र इच्छा के प्रश्न को सामाजिक सांस्कृतिक ढांचे से जोड़ते हुए पृथक रूप से देखा जाये। जब तक स्त्री–पुरूष के आधारभूत संतुलन पर चोट नहीं की जाती तब तक नारीवादी सामाजिक रूपान्तरण की प्रक्रिया अपने सही अर्थो में रूपान्तरित हो ही नहीं सकती और इसके बिना सही मायने में इसके रूपान्तरण की कल्पना मात्र करना भी बेमानी ही होगा ।

संदर्भ

1– शैली, राउनबोथन : *वीमैन एण्ड मूवमेण्ट*, राउटलेलै न्यूयार्क, 1992, पृ0 **8**

2– कात्यायनी : *दुर्ग द्वार पर दस्तक*, लखनऊ 2004, पृ0 **89–90**

3– लैंडिस, जान वी : *वीमैन एण्ड दि पब्लिक स्फेयर इन दि एज ऑफ दि फ्रैंच रिवोल्यूशन*, इथाका, कारनैल यूनिवर्सिटी प्रेस, 1998, पृ0 **2–3**

4– क्राफ्ट, *मेरी वोल्सटन : ए विंडिकेशन ऑफ दि राइट्स ऑफ दि वीमैन*, 1792

5– फुलर, *मार्गरेट : वीमैन इन द नाइन्टीन्थ सैन्चुरी*, 1845

6– ऐगेल्स, *फैडरिक : दि आरिजन आफ दि फैमिली प्राइवेट एण्ड दि स्टेट*, मास्को, 1948

7– वौल्फ, *वर्जीनिया : ए रोम ऑफ आनियस ओन*, 1929

8– मिल, *जॉन स्टुअर्ट : सब्जैक्शन आफ वीमैन*, 1869

9– बोआर, *सीमोन, दि : द सैकण्ड सैक्स*, 1949

10– *मिलेट : सैक्सुअल पालिटिक्स*, 1970

11– एल्मैन, *मेरी : थिंकिग एवाउट वीमैन,* 1968

12– फायरस्टोन, *गुलामिथ : दि डायलैक्टिस आफ सैक्स दि केस फार फैमनिस्ट रिबोल्यूशन,* 1970

13– चक्रवर्ती, *उमा : वॉट एवर हैपन्ड टू दि वैदिक दासी, रिकास्टिंग वीमैन,* सम्पादित कुमकुम संगारी एण्ड सुदेश वेद, दिल्ली 1989, पृ0 **27–29**

14– वार्थविक, *एज : केशव चन्द्र सेन : ए सर्च फार कल्चरल' सिन्थेसिस,* कोलम्बिया साउथ एशिया बुक्स, 1978

15– शिंदे, *ताराबाई : ए कम्पेरिजन बिटवीन वीमैन एण्ड मैन,* 1882

16– चक्रवर्ती, *उमा : दि राइटिंग हिस्ट्री दि लाइफ एण्ड टाइम्स आफ पाण्डित्य रामाबाई,* नई दिल्ली, काली फार वीमैन, पृ0 **203–204**

17– हैनलन, *ओ : ए कम्पेरिजन बिटवीन वीमैन एण्ड मैन : ताराबाई शिन्दे एण्ड दि क्रिटिक ऑफ जैण्डर रिलेशन्स इन कालोनियल इण्डिया,* मद्रास आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1994, पृ0 **51**

18– बागची, जसोधरा : *रिप्रेजेन्टिंग नेशनलिज्म : आइडियोलॉजी आफ मदरहुड इन कालोनियल बंगाल, इकानिमिक एण्ड पालिटिकल वीकली,* अक्टूबर 20–27, 1990

19– पटेल सुमाता : *कन्स्ट्रक्टशन एण्ड रिकन्स्ट्रक्शन ऑफ वीमैन इन गाँधी, इन आइडियल्स इमेजेज एण्ड रियल लाइव्स : वीमैन इन लिट्रेचर एण्ड हिस्ट्री, एडिलेड थार्नर एण्ड कष्णराज,* हैदराबाद, आरियण्ट लैंगमैन, 2000, पृ0 **228 से 321**

20– मिनाल्ट : *इन्ट्रोडक्शन : द एक्सटेंडेड फैमिली एज मैटाफर एण्ड द एक्सपन्शन ऑफ वीमैन्स रियलम, इन दि एक्सटेण्डेड फैमिली : वीमैन एण्ड पालिटिकल पार्टिसिपेशन इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान,* चाणक्या पब्लिशिंग, दिल्ली, 1981, पृ0 **8**

21– अली, अजरा, असगर : दि इमर्जेन्स ऑफ फैमिनिज्म एमंग इण्डियन मुस्लिम वीमैन 1920–1947 कराची 2000, पष्0 247

22– वसु एण्ड भारती, *रे : वीमैन्स स्ट्रगल : ए हिस्ट्री ऑफ आल इण्डिया वीमैन्स कांफ्रैन्स* 1927–1990, न्यू देहली, 1990

23– *पियर्सन : नेशनलिज्म, यूनिवर्सलाइजेशन एण्ड दि एक्सटेंडेड फीमेल स्पेस इन बाम्बे सिटी, इन दि एक्सटेंडेड फैमिली : वीमैन एण्ड पालिटिकल पार्टिसिपेशन इन इण्डिया एण्ड पाकिस्तान, एडिटेड मिलनाट,* चाणक्या पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1961, पृ0 **174–191**

24– *फोर्ब्स : वीमेन इन माडर्न इण्डिया,* कैम्ब्रिज, 1998, पृ0 **89**

25– अली, अरूणा, *आसिफ : दि रिअर्जेन्स आफ इण्डियन वीमैन,* लन्दन 1991, पृ0 **131**

26– पूर्वोक्त, पृ0 **142**

27– ललिता के : *स्त्री भाक्ति संगठन, वी वेयर मेकिंग हिस्ट्री लाइफ स्टोरीज ऑफ वीमैन इन दि तेलंगाना पीपुल्स स्ट्रगल,* लन्दन, 1989, पृ0 **267 से 272**

28– बुटालिया : *एन आर्काइव विद ए डिफ्रेन्स : पार्टिशन टेलर्स, इन दि पार्टिशन्स आफ मिमोरी : द आफ्टर लाइफ आफ द डिवीजन आफ इण्डिया,* एडिटेड, सुवीर कौल, नई दिल्ली, 2001, पृ0 **208–241**

29– मैनन, रितु और भसीन कमला : *बार्डस एण्ड बाउण्ड्रीज : वीमेन इन इण्डियाज, पार्टिशन*, न्यू बुन्सविक, 1998, पृ0 **57 से आगे** ।

30– बसु दुर्गादास *: भारत का संविधान – एक परिचय,* चतुर्थ संस्करण, दिल्ली, 1994, पृ0 **25–26**

31– एवरेट, जे0एम0 : *बीमैन एण्ड सोशियल चेंज इन इण्डिया,* दिल्ली, 1965, पृ0 **75**

32– नैयर, जानकी : *वीमैन एण्ड लॉ इन कोलोनियल इण्डिया,* दिल्ली, 2000, पृ0 **222–225**

33– फोरबस : *इन परसुइट्स आफ जस्टिस : वीमेन्स आर्गेनाइजेशनस एण्ड लीगल रिफार्म, उद्धृत साम्य शक्ति,* ए जर्नल आफ वीमेन स्टडीज, 1984, पृ0 **38–39**

34– कुमार, राधा : *स्त्री संघर्ष का इतिहास,* दिल्ली 2002, पृ0 **315–338**

35– आर्य साधना, मेनन, निवेदिता, लोकनीता, जिनी : *नारीवादी राजनीति : संघर्ष एवं मुद्दे,* दिल्ली माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली 2001, पृ0 **202**

36– आर्य अनीता : *इण्डियन वीमैन सोसाइटी एण्ड लॉ,* दिल्ली 2000, पृ0 **2–10**

37– टुवर्डस इक्वैलिटी : *रिपोर्ट ऑफ दि नेशनल कमेटी ऑन दि स्टेट्स आफ विमैन इन इण्डिया, मिनिस्ट्री ऑफ ह्यूमन रिसोर्स डेवलपमैण्ट,* डिपार्टमेण्ट ऑफ सोशियल वैल्फेयर, नई दिल्ली, 1974

38– आर्य साधना : *स्वतन्त्रता उपरान्त विकास का स्वरूप और महिलाओं पर प्रभाव,* संकलित नारीवादी राजनीति, दिल्ली, 2001, पृ0 **212–218**

39– टाइम्स आफ इण्डिया, दिल्ली, 13 अक्टूबर, 2007

40– होम मिनिस्ट्री गवर्नमैण्ट ऑफ इण्डिया एण्ड क्राइम इन इण्डिया, नेशनल क्राइम रिकार्डस ब्यूरो, होम मिनिस्ट्री, इण्डियन गर्वमेण्ट

41– पूर्वोक्त

42– पूर्वोक्त

43– एग्नेस, फलेविआ : *स्टेट जैंडर एण्ड रिहॅटरिक ऑफ लॉ रिफार्म,* बम्बई, रिसर्च सेंटर फार वीमैन स्टडीज, 1995, पृ0 **1–10**

44– नैयर, जानकी : *वीमैन एण्ड लॉ इन कोलोनियल इण्डिया,* दिल्ली, 2000, पृ0 **216**

45–इनलोय : *बनारस बीचेज एण्ड बेसेस : मेकिंग फेमनिस्ट सैन्स ऑफ इण्टरनेशनल पालिटिक्स,* कैलीफोर्निया, 1990

46– गाँधी, नन्दिता एण्डनन्दिता शाह : *दि इश्यूज एट स्टेक : थ्योरी एण्ड प्रैक्टिस इन द कान्टैम्परेरी बीमेन्स मूवमैण्ट इन इण्डिया,* नई दिल्ली, 1991

47– लियोनार्डो : जेण्डर एट दि क्रासरोड ऑफ नालेज, वर्कले, 1991